श्रीयुत माननीय अतनुदासजी उपाध्याय
के करकमलोंमें सादर भेंट
ह. स. त्रिवेदी
१८-३-५
11496

❀ श्रीः ❀

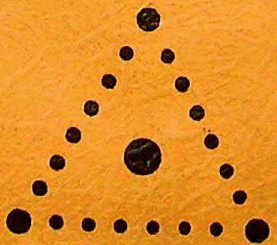
श्रीमदमृतमन्थमालायाः (१)

प्रथमं पुष्पम् ।

श्रीमहानुभवशक्तिस्तवः

सव्याख्यः

207



प्रणेता—

श्रीमान् अमृतनाग्भव आचार्यः

प्रकाशक—
पं० श्रीगोविन्दमिश्र
(अध्यक्ष—श्रीस्वाध्यायसदन)
चौबुर्जा भरतपुर राजस्थान

पुस्तक प्राप्ति स्थान—
श्रीस्वाध्यायसदन
पो० सोलन
हिमाचल प्रदेश

सेठ श्री लक्ष्मीचन्द
गङ्गा मन्दिर भरतपुर राजस्थान

मुद्रक—
नरेंद्र प्रिंटिंग प्रेस,
२० मॉडल बस्ती,
दिल्ली।

16696
207
16696

❀ श्रीः ❀

श्रीमदमृतग्रन्थमालायाः प्रथमं पुष्पम् ।

महामहिम-आचार्य-

श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतः

श्रीमहानुभवशक्तिस्तवः

शास्त्री एम्. ए. एम्. ओ. एल्. पदवीधारिणा

काश्मीरक बलजिन्नाथ पण्डितेन प्रणीताभ्यां

संस्कृतहिन्दीव्याख्याभ्यां समलंकृतः ।

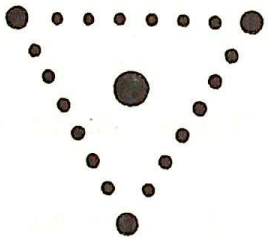
PRESENTED BY
SRI M. ANANTHASAYANAM AYYANGAR

प्रकाशकः

मिश्रगोविन्दः

भरतपुरम्

प्रथमं संस्करणम् सं० २०१० मूल्यम् ॥)



अमृतनिभृतशास्त्रं साधु मुद्रापयित्वा
प्रथयति विबुधानां लब्धुकामः प्रसादम् ।
अमलमतिप्रसादीलालपुत्रोऽत्रिगोत्रो
भरतपुरनिवासी मिश्रगोविन्दशर्मा ॥

R617
N67
16696

* श्रीः *

जयति विरचयन्ती विश्वचित्रं विचित्रं
जयति परिमृजन्ती हेलया सर्वमेतत्।
जयति विहितलीला निग्रहानुग्रहाभ्यां
जयति जगदवन्ती शाम्भवी शक्तिराद्या॥

इह जगति शास्त्राणां द्विप्रकारा प्रवृत्तिः, अविद्यारूपत्वेन विद्यारूपत्वेन च। तत्राविद्यारूपाणि शास्त्राणि धर्मार्थकामपराणि। तेषामुपासनेन जनः संसारेऽभ्युदयमवाप्य सर्वेषामपि लौकिकालौकिकसुखानां परममुपभोगमवाप्तुं समर्थो भवति, सर्वं चानिष्टजातं निवारयितुं क्षमते। इत्थमनिष्टप्राप्तिरूपेभ्य इष्टाप्राप्तिरूपेभ्यश्चापि दुःखेभ्य एव मुक्तिमवाप्तुं शक्नोति। तदेतेषां शास्त्राणां व्यावहारिकमुक्तिरूपमवरं स्वातन्त्र्यमेव प्रयोजनम्। एतत् स्वातन्त्र्यमनवाप्य पारमार्थिकस्वातन्त्र्यप्राप्तिर्वन्ध्यासुतोत्पत्तिकल्पा। सम्यगवाप्ता च व्यावहारिकमुक्तिर्यदि पारमार्थिकमुक्तेरङ्गतारूपामुपायतां न याति तत् सा निष्फला कृपणजनसमर्जितसम्पत्तिकल्पा केवलमायासकारिणी। तस्माद् व्यावहारिकं स्वातन्त्र्यमवाप्य तद्बलेन पारमार्थिकस्वातन्त्र्यप्राप्तये यतनीयम्। अत एव चेशावास्योपनिषदि स्पष्टमुपदिष्टम्—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं स ह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ इति।

पारमार्थिकी तु मुक्तिर्वस्तुतो न कोऽपि भिन्नतयाऽवाप्यः पदार्थः। सर्वस्यापि स्वभावभूतोऽसौ धर्मः। सर्वस्य भावाभावरूपस्य जगतः परमेश्वररूप-

त्वात्, परमेश्वरस्य च परमस्वतन्त्रत्वात्। ननु यद्येवं तर्हि किमिति जगतो भिन्नतया बद्धतया च प्रथनम्, किमिति च मोक्षशास्त्राण्युपदिश्यन्ते। सत्यम्, जगद् भिन्नतया भासते। परमेतद्भिन्नतया जगतः अवभासनं पुनश्च स्वात्मनाऽभेदीकरणमेव परमेश्वरस्य स्वभावः। एतदेवास्य परमेश्वरत्वं स्वातन्त्र्यं च। सर्वशक्तिमत्त्वरूपात् पूर्णस्वतन्त्रत्वात् स्वात्मन्येव चिद्रूपे, स्वात्मनैव चिद्रूपेण, स्वमेव चिद्रूपमचिद्रूपतया, अभिन्नमपि भिन्नतया, निर्मलमपि समलतया, अद्वैतमपि द्वैततया, मुक्तमपि बद्धतया निरुपादानमेव जगदवभासयति। एवं कुर्वन्नपि स्वकीयात् पारमार्थिकाद्रूपान्न च्यवते। पुनश्चानुग्रहक्रमेण द्वैतमलापनयनपूर्वकमद्वैतं स्वतन्त्रं स्वरूपं प्रकाशयतीतीत्थं बन्धमोक्षक्रीडाशीलोऽयं परमेश्वरः। न चात्र किमर्थं, कथं, कुतः, इत्यादीनां प्रश्नानामवकाशः। परमेश्वरस्यैवंस्वभावत्वात्। न च स्वभावे प्रश्नावकाशः। अग्निः किमित्युष्णः, दाहकः, प्रकाशको वेति प्रष्टैव लोके मूर्खो वोन्मत्तो वा भण्यते। यद्यग्नावेते धर्मा न भवेयुस्तर्हि नासावग्निः, स्वरूपलोपस्तस्य स्यात्। तस्मादेतत् स्वभावत्वमेवाग्नेरग्नित्वम्। एवमेव बन्धमोक्षक्रीडाशीलत्वमेव देवस्य परमेश्वरत्वम्। उक्तं च श्रीमदभिनवगुप्तपादैः—

अस्थास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः।
महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यक्ष्यद् घटादिवत्॥ (तं० आ०) इति।

तदित्थं सर्वोऽपि जनो वस्तुतः परमेश्वर एव। तस्मात् परमेश्वरत्वात् सदैव मुक्तः स्वतन्त्रश्च। परं शक्तिप्रसरेऽत्र स्वातन्त्र्यात् स्वयं शिव एव मलानां कल्पनया मलिनत्वमात्मन्यवभास्य जीवरूपतया प्रकाशते। एवंरूपत्वेऽत्र अणुत्वं, भिन्नत्वं, कर्मपाशबद्धत्वं च तच्छक्त्यैव सुस्थितम्। पुनश्च क्रीडयैव भगवान् आत्मरूप एव जीवे मलानां भेदनपुरःसरं पूर्णं स्वं रूपं प्रकाशयति। अत्रैवानु-

R S V L 16696

ग्रहाख्ये पारमेश्वरे कृत्यविशेषे मोक्षशास्त्राणामुपयोगः ।

मोक्षशास्त्राणि च विद्यारूपत्वेन प्रवृत्तानि परमेश्वरेणानुग्राह्यजनानामधिकारभेदाद् बहुभिः प्रकारैरुपदिष्टानि । अधिकारानुसारमेव गुरवो जनान् तेषु प्रवर्तयन्ति । क्रमेण चोत्तरोत्तरं मलानां प्रक्षये जाते चरमपदप्राप्तये शैवशास्त्रमुपदिष्टं महेश्वरेण । तच्छास्त्राभ्यासाज् जनः पूर्णं स्वं स्वरूपं प्रत्यभिज्ञाय सर्वथा मुक्तो भवति । मुक्तः किं भवति । सदैव मुक्तोऽपि सन् स्वशक्त्यैव गोपितं स्वं मुक्तत्वं पुनः प्रत्यभिज्ञाय कृतकृत्यो भवति । उक्तं च श्रीमदभिनवगुप्तपादैः—

अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ॥ (प० सा०) इति ।

परमेश्वरस्य पारमार्थिके रूपे स्वयमेवोपास्योपासकोपासनारूपत्वादुपासनाव्यवहारोऽशक्यः । अतश्च शक्तिमुखेनैव तस्योपासनं न्याय्यम् । सा च शक्तिः परमेश्वरादभिन्ना, तस्य परमेश्वरत्वरूपा । बहिः प्रसरे सैव सदाशिवादिपृथ्वीपर्यन्ततामाप्नोति । उक्तं च—

शक्तयोऽस्य जगत् सर्वं शक्तिमांश्च महेश्वरः ॥ इति ।

प्रसरक्रमे च तस्याः चिन्निर्वृतीच्छाज्ञानक्रियात्मकानि पञ्च मुख्यानि रूपाणि । एतैरेव मुखैरुपास्यते परमेश्वरो रहस्यविद्भिरधिगतदीक्षैः समभ्यस्तमाहेश्वरशास्त्रैः साधकैः । तथा चोक्तम्—

शैवी मुखमिहोच्यते ॥ (वि० भै०) इति ।

इत्येवंप्रायाणि शास्त्ररहस्यान्यत्र जगदम्बायाः स्तोत्ररत्ने संगृहीतानीतिकृत्वा टीकारम्भे माहेश्वरशास्त्रसिद्धान्तोऽत्र संक्षेपेणोपोद्घातरूपत्वेन संगृहीतः । रहस्यानि तत्र तत्र प्रकाशयिष्यन्ते । रहस्यान्तराणि चाधिगतदीक्षैरेव स्वयमेव ज्ञास्यन्त इति तत्प्रकाशने यत्नो न कृतः । स्तोत्रव्याख्यानमिदानीमारभ्यते—

श्रीमहानुभव-शक्तिस्तोत्र

की

हिन्दी टीका

प्राचीन काल से सिद्ध जनों को योग आदि के अभ्यास से जिस आत्मसाक्षात्कार का अनुभव हुआ उसी का उन्होंने शब्दों में वर्णन किया। वर्णन एक तो इस कारण किया कि अन्य जीवात्माएँ भी इसी साक्षात्कार के मार्ग की ओर प्रेरित हो जायँ और दूसरे इस कारण से कि आत्मा का अनुभव पूर्ण आनन्दमय हुआ करता है। अनुभव के समय जीव आनन्द में मस्त हो जाता है। अनुभव के अनन्तर व्युत्थान की दशा में उस अनुभव का संस्कार भी मानव को मस्त बना देता है और इसी मस्ती के दौर में उसके मुख से ऐसे शब्द निकलते हैं जिनमें उस अनुभव की झलक सी चमकती है। इसी प्रकार से संसार में वेद आदि शास्त्र प्रकट हुए। प्रकृत स्तोत्र भी इसी प्रकार के महान् अनुभव की झलक को लिए हुए हमारे सामने आ रहा है।

परमेश्वर पूर्ण चैतन्य स्वरूप हैं। उन्हें सत् चित् और आनन्द कहते हैं, वस्तुतः परमेश्वर उसे कहते हैं जिसे किसी विचार से सत् किसी से चित् और किसी से आनन्द कहा जाता है। सत् चित् और आनन्द वस्तुतः भिन्न भिन्न वस्तुएँ नहीं, एक ही वस्तु के तीन नाम हैं। इसी लिए श्री आत्मविलास में परमेश्वर को 'सच्चिदानन्दकन्द' कहा गया है। परमेश्वर शुद्ध बुद्ध निरञ्जन हैं। उन्हें किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं, किसी से द्वेष नहीं। सुख दुःख से रहित हैं। धर्म अधर्म उनको

छू नहीं सकते। वे कल्लोलहीन समुद्र की तरह शान्त हैं। परन्तु इस प्रकार के होते हुए भी वे एक चट्टान जैसे जड़ नहीं हैं। वे चेतन हैं। पूर्ण चेतन हैं। यह चैतन्य ही उनका पूर्ण आनन्द है। इस चैतन्य की महिमा से वे शान्त होते हुए भी गतिशील जैसे हैं। उनकी गति को न्यायशास्त्र का 'चलनात्मक कर्म' नहीं समझना चाहिए। चलन तो उसका होता है जो मूर्त हो। परमेश्वर तो विभु से भी विभु हैं, सर्वव्यापक के भी व्यापक हैं। वस्तुतः उनकी गतिशीलता का पूरा वर्णन हमारी इस मायामयी द्वैत की भाषा में हो नहीं सकता अतः अरुन्धतीन्याय से शास्त्रों में उसे 'स्पन्द' कहा गया है। परमेश्वर वस्तुतः पूर्णतया प्रकाश रूप हैं। पर वह प्रकाश सर्वतः और सर्वथा विमर्श से ओतप्रोत है। वस्तुतः विमर्श ही प्रकाश है और प्रकाश ही विमर्श है। हम लोगों को इस द्वैत की दशा में भी यदि किसी वस्तु का प्रकाश होता है तो साथ ही विमर्श भी हो ही जाता है कि 'यह अमुक वस्तु है।' इसी प्रकार से यदि हमें किसी वस्तु का विमर्श हो तो वह विमर्श सदा प्रतीत भी होता ही है। यह प्रतीति ही उसका प्रकाश है। परमेश्वर के प्रकाश में इतना भेद है कि वहाँ कोई भी वस्तु विषय के रूप में प्रतीत नहीं होती। उस दशा में समस्त विषय ही परमेश्वर की आत्मा में लीन हो गये होते हैं। अतः वहां केवल परिपूर्ण आत्मा ही का प्रकाश होता है और इसी का विमर्श भी होता है। वस्तुतः परिपूर्ण प्रकाश—विमर्शरूप ही परमेश्वर हैं। हम लोग अपनी कल्पना से प्रकाश रूप मानकर परमेश्वर को शिव और विमर्श रूप मानकर उसे शक्ति कहते हैं। इस तरह शिव और शक्ति एक ही परमशिव के दो नाम हैं जिनका आधार हमारी दो प्रकार की कल्पना

ही है। वे स्वयं कल्पना से अतीत हैं। केवल अविकल्प साक्षात्कार में ही उनकी शिवशक्तिरूपता का भास होता है।

परमेश्वर की इस पूर्ण विमर्श शक्ति को ही शास्त्रों में स्पन्द कहा गया है। जैसे जल से भरा हुआ पात्र हिलने से छलकता-सा है और छलकने से जल की बूँदें इधर उधर पड़ती हैं; कुछ इसी जैसे प्रकार से आनन्द से परिपूर्ण परमेश्वर इसी आनन्द रूपी स्पन्द शक्ति के कारण छलकते-से हैं। इनके छलकने से ऐसा हो जाता है कि वे पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण-जैसे प्रतीत होने लगते हैं, परन्तु ऐसा होते हुए भी अपनी परिपूर्णता से च्युत नहीं होते। इसी तरह एक होते हुए भी अनेक-जैसे प्रतीत होते हैं। अपूर्ण-जैसे बनकर विश्व को अपने आप से भिन्न मानते हैं। एक ओर घट-पट आदि के रूप में ठहर कर अतीव संकुचित होकर ज्ञेय बन जाते हैं और दूसरी ओर से शरीर प्राण आदि बनकर संकुचित ज्ञाता बन जाते हैं। अनन्त रूपों में ज्ञाता और ज्ञेय बन जाते हैं। इतना कुछ किसी वस्तु को पाने के लिए या किसी दूसरी वस्तु के प्रभाव से नहीं करते। यह सब कुछ अपने पूर्ण स्वातन्त्र्य के ही कारण करते हैं। परमेश्वर की इसी स्वातंत्र्य की क्रीड़ा का नाम संसार है। अतः यह संसार परमेश्वर से भिन्न कोई वस्तु नहीं। परमेश्वर का ही एक विचित्र रूप है, उसी की शक्ति का विकास है। एक छोटे साधारण बीज में एक महान् और विचित्र वृक्ष को प्रकट करने की सामर्थ्य छिपी रहती है, या यों कहिए कि वृक्ष की शाखाएँ, उसके पत्ते, पुष्प, फल आदि उसका रूप-रस-वैचित्र्य आदि सब कुछ बीज में सूक्ष्मरूप में विद्यमान होता है। यदि ये वस्तुएँ उसमें न हों तब तो उसे बीज ही नहीं कह सकते। इन सबको प्रकट करने की शक्ति बीज में है, यही

16696

उसकी बीजता है। इसी प्रकार परमेश्वर में भी इस अनन्त वैचित्र्यमय विश्व को प्रकट करने की जो सूक्ष्म सामर्थ्य है उसी को शिव की शक्ति कहा जाता है। यह शक्ति ही वस्तुतः परमेश्वर की परमेश्वरता है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो कुछ भी न होता। केवल अभाव ही अभाव होता या वह भी न होता। परमेश्वर भी होता या न होता इस बात का विचार ही कौन करता। परन्तु परमेश्वर हैं और शक्तिपरिपूर्ण हैं। शक्ति की महिमा से शिवतत्त्व से लेकर पृथ्वी तत्त्व तक समस्त विश्व को प्रकट करते हैं। उनकी इस शक्ति को ही ऊपर स्पन्द नाम से कहा गया है। इसको स्फुरत्ता, उच्छलत्ता आदि नामों से भी गाया गया है। यह शक्ति भी शिव की तरह परिपूर्ण है और एक है। परन्तु एक होती हुई भी भिन्न-भिन्न तत्त्वों में अनेक रूपों में प्रकट होती है। इस पाञ्चभौतिक संसार के वैचित्र्य में तो इस पराशक्ति के अनन्त रूप देखने में आते हैं। जहाँ यह माया का रूप धारण करती है वहाँ भेद दशा का स्फुट विकास होता है। माया दशा तक उतरने में भी इसकी कई एक दशाएँ प्रकट होती हैं। क्योंकि एकदम अद्वैत से द्वैत प्रकट नहीं होता। अद्वैत से द्वैताद्वैत और उससे द्वैत प्रकट होता है। द्वैताद्वैत को ही भेदाभेद दशा कहते हैं। भेदाभेद दशा में भी कई एक सीढ़ियाँ हैं। इन समस्त सीढ़ियों की दशा में भगवती शक्ति के भी भिन्न-भिन्न रूप प्रकट हो जाते हैं, जिनका साक्षात्कार योगियों को समाधि द्वारा होता है। भगवती शक्ति के इन्हीं रूपों में पाँच रूप अधिक प्रधान हैं। उन रूपों में भगवती के पाँच नाम ये हैं—चित्शक्ति, निवृत्तिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। इन्हीं पाँच शक्तियों का विशेष वर्णन इस स्तोत्र में आचार्य महोदय ने किया है॥

तत्रादौ मङ्गलाचरणव्याजेन परमेश्वरमेव सद्गुरुं नमस्करोति—

प्रपूर्य स्वातन्त्र्यादनुपमनिजानन्दसुधया
मुहुर्नानाकारान् निजरचितसद्भावचषकान् ।
स्वमेव प्रीणानं निजललितघूर्णानमतुलं
नमामो विश्वेषां विमलचरणं दैशिकवरम् ॥१॥

पदसङ्गतिः—स्वातन्त्र्यात् कारणभूतादनुपमो यो निजानन्दः स एव सुधा-अमृतं, तया नानाकारान् निजरचितान् - स्वयं निर्मितान् सद्भावानेव चषकान् मुहुर्मुहुः - वारंवारं, प्रपूर्य - प्रकर्षेण पूरयित्वा, निजम् - आत्मीयं, ललितम् - अतिसुन्दरं, घूर्णानं - विमर्शप्राधान्यात् स्पन्दैर्निर्भरं, स्वम् - आत्मानमेव, प्रीणानम् - प्रसन्नतामापादयन्तं, विमलचरणं, विश्वेषां - सर्वेषामपि, दैशिकवरं - गुरुश्रेष्ठं नमामः ॥

विशेषार्थः—अभिन्न एवाविचित्र एव च भित्तिस्थानीये स्वात्मनि भेदप्राणस्य विचित्रस्य विश्वचित्रस्यावभासनं, भिन्नत्वेनावभासमानेऽपि च जगति परमार्थत्वेनाद्वैतादप्रच्यवनमेव परमेश्वरस्य स्वातन्त्र्यम् । एतदेवास्य परमेश्वरत्वम् । अन्यथा व्योमवदौश्वरो वा, अनीश्वरो वा, किञ्चिद्वा, अकिञ्चिद्वा, किमपि न स्यात् । परमेश्वरस्य विश्वनिर्भराद्वैतस्वात्मविमर्शनमेव मुख्यं रूपम् । स एव चास्यानन्दः । विमर्शरहितत्वे कः आनन्दः, कस्य वा आनन्दः । आनन्द एव च परमेश्वरः । तस्यानन्दरूपत्वादेव निजानन्देत्युक्तम् । यथा हि सैन्धवखण्डोऽन्तर्बहिरपि लवणरसघनः, न तस्य लवणत्वमौपाधिकं लोके, तथैव परमेश्वरस्यानुपाधिक एवानन्दः । अत एवानुपमोऽसावानन्दः । सर्वेषामानन्दानां तदुपजीव्यत्वात् केनासावुपमीयेत । आनन्दश्चानन्दत्वादेव सुधा । नानाकाराः खलु

भावाः घटपटादयः सुखदुःखादयश्च मायीयभेदभिन्नाः । न तु वस्तुतश्चिद्रूपादपि कथञ्चिदपि भेदयोग्याः । ते च स्वयमेव, स्वात्मन्येव, स्वस्वातन्त्र्यादेव परमेश्वरेण भिन्नत्वेनावभासिताः । तदवभासनमेव तेषां रचनम् । ते भावा एवात्र चषकीभूताः निजानन्दसुधया प्रपूर्यन्ते परमेश्वरेण । प्रपूरणं च तेषां स्वात्मविमर्शमहासमुद्रे निमज्जनेन विमर्शीकरणम् । तच्च विमर्शनं परमेश्वरस्याविश्रान्तं स्वभावत्वात् । अत आह—मुहुरिति । अभावोऽपि यदि किञ्चिदस्ति तर्हि भाव एवासौ । यदि च नास्ति तर्हि नास्त्येव । यश्च नास्त्येव तस्य कथं प्रपूरणम्, तस्य नास्तित्वमपि यदि प्रकाशते तर्हि प्रकाशस्य विमर्शप्राणितत्वात् तस्यापि विमर्शीकरणं स्वभावसिद्धम् । यदि च न प्रकाशते तर्हि तत्कृतायाः शङ्काया अवतार एव नास्ति । अतएव 'सद्भाव' इत्येवोक्तम् । ललितानामपि विमर्शरूढानामेव लालित्यावभासनाद्विमर्शस्यैव वस्तुतो मुख्यं लालित्यम् । विमर्शरूपश्च परमेश्वर एव ललितः । इतरेषामपि ललितानां पदार्थानां परमेश्वरलालित्यलेशोपजीवित्वमेव । स्वस्वरूपं परमेश्वरस्य घूर्णनशीलमानन्दतरङ्गनिर्भरत्वात् । यदि हि एवं न स्यात् तर्हि कः कस्य परमेश्वरः । सति चैवमानन्दसमुच्छलनेन जगदवभासनम् । अवभासमाने च जगति स्वात्मरूपस्य जगतः पञ्चकृत्यनिपुणत्वेन परमेश्वरः स्वयमेव । तथा चोक्तं श्रीमदुत्पलदेवपादैः—

यत् स्वयं निजरसेन घूर्णसे ।
तत् समुल्लसति भावमण्डलम् ॥ (शि० स्तो०) इति ।

पञ्चकृत्यक्रीडया च स्वयमेव स्वात्मानं प्रीणयति । प्रीणनमप्यत्र पारमेश्वरं स्वाच्छन्द्यमेव । न तु क्वापि भेदलेशशङ्का । वैखरीरूपाः शब्दास्तु भेदप्राधान्यात् राहोश्शिर इतिवत् काल्पनिकं भेदमङ्गीकृत्य प्रवर्तन्ते । सर्वथाऽभिन्नत्वेन स्वात्मपरमेश्वरस्य वर्णनमेतैः शब्दैः कर्तुमेव न शक्यम् । ईदृशस्य स्वरूपस्यानु-

भवेनैव वेद्यत्वम्। तेनापि वा न वेद्यत्वम्। परमेश्वरस्य सर्वथा वेदकत्वाद् वेद्यभूम्यवतारानर्हत्वाच्च। 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'—इति ह्युपनिषद्वाक्यम्। सर्वेषामपि गुरुः परमेश्वर एव। सकलनिगमागमप्रवर्तकत्वात्। साक्षात्कृतस्वात्ममहेश्वरभावो योग्यपि परमेश्वरादभिन्नः। ततोऽपि परमेश्वर एव सद्गुरुः ॥१॥

पहले श्लोक में परमगुरुस्वरूप, शिवशक्तिमय परमेश्वर का यों वर्णन किया गया है:—

वस्तुतः सद्गुरु उसी को कहा गया है जो किसी योग्य अधिकारी को अपने परिपूर्ण परमशिव स्वरूप का साक्षात्कार करा सके। ऐसा साक्षात्कार वही करा सकता है जिसने स्वयं आत्मदेव का साक्षात्कार किया हो। जिसने आत्मबल साक्षात्कार को प्राप्त किया वह तो शरीर के होते हुए भी साक्षात् शिव ही है। उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्त दशा में भी जब उसे प्रतिक्षण आत्मसाक्षात्कार धारारूप से चलता ही रहता हो तो उसमें और शिव में क्या भेद रहा। तो इस प्रकार से वास्तविक सद्गुरु परमेश्वर ही है दूसरा नहीं। परमेश्वर ने ही पहले अपने स्वातन्त्र्य की महिमा से समस्त घट-पट आदि भावों को बनाया अर्थात् ज्ञेय रूप में भिन्न रूप में इन्हें प्रकट किया। इन भावों के आकार भी नाना प्रकार के बनाये। अब जीवन्मुक्त दशा में आकर अपने पूर्ण स्वातन्त्र्य के माहात्म्य से इन्हीं भावों के प्याले बनाकर इनको बार बार अनुपम आत्म-आनन्द के अमृत से पूरे भर भर कर, आनन्द की मस्ती से चकराते हुए झूमते हुए अपने ही सुन्दर और अनुपम स्वरूप को तृप्त कर रहे हैं। इस प्रकार के उस निर्मल चरणों वाले विश्व के गुरु को हम नमस्कार कर रहे हैं ॥२॥

चिन्निर्वृत्त्यादिभिः पञ्चभिरपि मुखैः परां भगवतीं क्रमेण स्तोतुमादौ चिच्छक्तिमुखेन द्वितीयपद्येन स्तौति—

प्राक् सर्गतोऽपि परतोऽपि च मध्यदेशे
सांसर्गिकेऽत्र सकले परिपूर्णरूपा ।
नैसर्गिकी परशिवाकृतिबिन्दुबीजं
वैसर्गिकी जयति शक्तिरनन्तवीर्या ॥२॥

पदसंगतिः—नैसर्गिकी - परमेश्वरस्य स्वाभाविकी, परशिवाकृति यद् बिन्दुबीजं तद्रूपा, वैसर्गिकी - विसर्गसम्बन्धिनी सृष्टिकर्त्री, अनन्तवीर्या, शक्तिः सर्गतः - सृष्टेः प्रागपि, सृष्टेः परतोऽपि - पश्चादपि, सांसर्गिके-भावानां संयोजनात्मनि सम्बन्धप्रधाने मध्यदेशे - जगतः स्थितिकालेऽत्र सर्वत्रापि परिपूर्णरूपा सती सा शक्तिर्जयति - सर्वोत्कर्षेण वर्तते ।

विशेषार्थः—शिवः शक्तियुक्त एवं शिवत्वं निर्वहति । अशक्तेः शिवत्वमेव कुतः । वस्तुतश्च शिवः शक्तिश्चेत्येकस्यैव परतत्त्वस्य वाचकं पदद्वयम् । परमेश्वर एव प्रकाशप्राधान्येन शिवः, विमर्शप्राधान्येन च शक्तिरिति व्यवह्रियते तत्त्वविद्भिः । प्रकाशस्य विमर्शरहितत्वेन जडत्वमुक्तं श्रीप्रत्यभिज्ञाकृद्भिः—

प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः ॥ (ई० प्र०) इति ।

विमर्शस्य च प्रकाशराहित्येऽप्रकाशत्वादेवान्धतमसप्रायत्वम् । सविमर्श एव प्रकाशः प्रकाशो भवति, सप्रकाश एव च विमर्शो विमर्शो भवति । परस्परराहित्य उभयोरपि स्वरूपपरिहार एव स्यात् । अतएव नैसर्गिकी परमेश्वरस्य शक्तिः । शक्तेरेव माहात्म्याद् अस्फुटत्व - स्फुटतोन्मुखत्व ईषत्स्फु-

टत्व-स्फुटत्व-स्फुटतरत्व-स्फुटतमत्वादिक्रमेणास्य जगतो विसर्गः इति प्रतिपादितप्रायम्। सा विसर्गोन्मुखी वैसर्गिकी शक्तिरेव—

तामर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥ (पं० स्त०) ।

इत्येवं स्तुता भगवता धर्माचार्येण । सा हि सृष्टिस्थितिसंहारकालेषु सर्वदैव परिपूर्णरूपा, परमेश्वररूपत्वात्। परमेश्वरस्य च सदा परिपूर्णरूपत्वात्। सम्प्रदायविद्भिश्च सा श्रीचक्रस्थमध्यबिन्दुरूपतयोपास्यते। स च मध्यबिन्दुः सितशोणबिन्दुयुगलैक्यीभावरूपः, शिवशक्त्युभयसामरस्यस्वभावः इति श्रीकामकलाविलासे द्रष्टव्यम्। एतदेवोक्तं परशिवाकृतिबिन्दुबीजमित्यनेन। सकलशक्तीनां पराशक्तिरूपत्वादेवास्याः अनन्तवीर्यत्वम्। प्रतिपादितं चैवमेव श्रीमदभिनवगुप्तपादैः—

बहुशक्तित्वमप्यस्य तच्छक्त्यैवावियुक्तता ॥ (तं० आ०) ॥२॥

दूसरे श्लोक में चित् शक्ति का वर्णन इस प्रकार से किया गया है:—

जिस प्रकार से बीज से वृक्ष का निर्गम हुआ करता है, उसी जैसे प्रकार से परमेश्वर से विश्व का निर्गम होता है। इस निर्गम को ही विसर्ग कहा गया है। विसर्ग करने वाली परमेश्वर की चैतन्य शक्ति का ही नाम यहाँ वैसर्गिकी शक्ति कहा गया है। यह शक्ति परमेश्वर ने कहीं से प्राप्त नहीं की है। यह तो उसकी स्वभावभूत परमेश्वरता है अतः यह चित् शक्ति नैसर्गिकी—स्वाभाविकी है। सिद्ध लोग श्रीचक्र को ही भगवती का अनन्तवैचित्र्यपूर्ण स्वरूप मानकर उसी की उपासना करते हैं। उस चक्र के मध्य में जो बिन्दु होता है उसे शिव-

शक्तिमय परमशिवस्वरूप माना जाता है। शिव की शिवता का बीज तो शक्ति ही है, अतः इस बिन्दुरूप शिव की शिवता का बीज यही चित् शक्ति है। जितना भी यह अनन्तवैचित्र्यपूर्ण संसार है यह इसी पराशक्ति का विकासमात्र है अतः यह शक्ति अनन्तवीर्या अर्थात् अनन्तशक्ति-परिपूर्ण है। इस संसार की सृष्टि से पहले सारा संसार इसी के भीतर सूक्ष्मरूप में विद्यमान था अतः इस शक्ति का स्वरूप सर्वथा परिपूर्ण था। सृष्टि के अनन्तर इस स्थिति की दशा में भी यह शक्ति पूर्ववत् परिपूर्ण ही है। संसार के विसर्ग से शक्ति रिक्त नहीं होती। पारमेश्वरी शक्ति सदैव परिपूर्णरूप ही होती है। यह स्थिति-काल तो अनन्तसम्बन्धमय है। देश, काल, आकार, क्रिया आदि जो कुछ इस सृष्टि और प्रलय के बीच में ठहरने वाली स्थिति की दशा में प्रतीत होता है, सब कुछ परस्पर सम्बन्धरूप ही हुआ करता है। जो वस्तु सम्बन्धरूप होती है वह अपूर्ण होती है। परन्तु भगवती चित्शक्ति इस सम्बन्धरूप स्थिति दशा को व्याप्त करती हुई यहाँ भी सम्पूर्णरूप ही है।

इदानीं क्रमप्राप्तेन द्वितीयेनानन्दापरपर्यायेण निर्वृतिमुखेन जगन्मातरं स्तौति—

अस्मीतिमात्रभरिताखिलविश्वभावा
बोधाभिनन्दनसमुच्छलितात्मरूपा ।
शान्तापि घोरतरघोरतमस्वरूपै-
राभाति सङ्कलितपञ्चविधप्रपञ्चा ॥३॥

पदसङ्गतिः—अस्मीतिमात्रेण - केवलं पूर्णाहन्ताविमर्शेन भरिताः सर्वेऽपि

जगद्भावाः यया सा, बोधस्य प्रकाशस्य यदभिनन्दनं विमर्शनेन चमत्करणं तेन समुच्छलितं-पश्चाद् विश्वविकासोन्मुखतां प्राप्तमात्मरूपं यस्याः सा, शान्तापि-क्षोभरहिताऽपि वस्तुतः स्वस्वातन्त्र्यादेव क्षोभप्रधानैरेव घोरतरैर्घोरतमैश्च स्वरूपैः संकलितः-निर्मितः पञ्चविधप्रपञ्चो यया सा ईदृशी विभाति-विशेषेण प्रकाशते ।

विशेषार्थः—यदेव पूर्वं निजानन्दसुधया प्रपूरणमुक्तं तदेवेह प्रत्यक्षवृत्त्या वर्णयितुं पूर्णाहन्ताविमर्शमुखेन प्रतिपादितमस्मीत्यादिना । प्रकाशस्य विमर्शात्मकचमत्काराविरेकेणैव जगद्रूपतया समुच्छलनं भवतीति प्रतिपादितं पूर्वमेव निजललितघूर्णानमित्यादौ । पूर्णाहंविमर्शो हि विमर्शीकृतविश्वभावजातनिर्भर इति भावः । क्लेशकर्मविपाकादिभिराणवादिमलैश्च रहितत्वं पूर्णतावस्थायां चाक्षुब्धत्वमेव भगवत्याः शान्तता । स्वस्माच्छान्तरूपादप्रच्यवमानापि हि सा स्वस्वाच्छन्द्यादिच्छाशक्तिदशाधिरूढा सती स्वात्मनि प्रक्षुब्धरूपत्वमवभासयन्त्यघोराः देवीराविर्भावयति । ताश्च सम्प्रदायविद्वद्यः शैवाध्वप्रदर्शिकाः सम्भवन्ति । पुनश्च ज्ञानशक्तिरूपतामापन्ना सती सैव विश्वोन्मेषात्मना घोरां मातृमण्डलीं सृजति । ताश्च देव्यः शुद्धाशुद्धमार्गदैशिकाः परापरत्वेन सम्मता रहस्यविद्भिः । ततश्च स्फुटतमक्रियाशक्तिरूपतामासादयन्ती सैवाशुद्धाध्वाधिष्ठातृणां पशूंश्च बन्धयितृणां घोरतरीणां शक्तीनां प्रसवभूमिर्भवति । उक्तं चागमेषु—

विषयेष्वेव संलीनान् अधोऽधः पातयन्त्यणून् ।
रुद्राणून् याः समालिंग्य घोरतर्योऽपरास्तु ताः ॥ इति ।

विस्तरतश्चैतत् श्रीतन्त्रालोके तृतीयाह्निके द्रष्टव्यम् । एतदेव शास्त्ररहस्यं प्रकटयति शान्तापि घोरतरघोरतमस्वरूपैरित्यादिना । अथवा-ये खलु सत्त्व-

रजस्तमःप्रधाना भावाः सांख्यशास्त्रे "शान्ता घोरा अघोराश्चेति" प्रतिपादिताः, त एवात्र प्रकारान्तरेण परामृष्टाः । जगतः सकलस्य चिच्छक्तिरूपत्वात् । विरोधाभासोऽप्यत्र स्फुटः । पञ्चविधप्रपञ्चसंकलनं चेदम्—पारमेश्वरी शक्तिरेव सकलान् सृजति, सैव रक्षति, सैव च संहरतीति प्रसिद्धं शास्त्रान्तरेष्वपि प्रपञ्चत्रयम् । आगमे पुनरपरमपि प्रपञ्चद्वयं प्रसिद्धम् । तच्चेदम्—निग्रहशक्तिपातेन भावान् पशूनां स्वात्मनः पृथगाभासयति भगवती । तस्याः एवानुग्रहशक्तिपातेन द्वैतदृष्ट्यपहता अपि पशवः स्वकीयपतिरूपप्रत्यभिज्ञानपूर्वकं सकलं जगत् पुनः स्वात्मरूपमेव परिपश्यन्ति । एतदेव द्वयं पिधानमनुग्रहश्चेति प्रसिद्धम् । उक्तमपि श्रीमता धर्माचार्येण—

विरिञ्च्याख्या मातः सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम् ।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी ,
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते ॥ (पं० स्त०) इति ।

इत्थं विविधै रूपैः पञ्चविधक्रीडानिपुणा पारमेश्वरी शक्तिः । पञ्चविधप्रपञ्चस्योल्लासनं चाघोरघोरघोरतरीरुपशक्तिद्वारैव निर्वाह्यते । एतत् पञ्चविधक्रीडानिपुणत्वमेव परमेश्वरस्य परमेश्वरत्वम् । सदैवाविच्छिन्नानि पञ्चकृत्यानि भगवतः । न खल्विदानीमस्य जगतः स्थितिकाले सृष्टिसंहारादीनामुपरमः । अनन्तै रूपैः पञ्चविधकृत्यानां प्रवर्तमानत्वात् । सदैव केचिदुत्पाद्यन्ते, केचिद्रक्ष्यन्ते, केचित् संहियन्ते, केषांचित् स्वरूपमपह्नयते, केषांचिच्च प्रकाश्यते पारमेश्वर्या शक्त्या । एतदेव जगन्नाटकसूत्रधारत्वं परमेश्वरस्य । एतदेव तस्य महादेवत्वम् । दिवः क्रीडार्थत्वात् । अयमेवाभिप्रायो—

नर्तक आत्मा ॥ (शि० सू०) ।

इति शिवसूत्रस्य । एतदेवाभिप्रेत्य स्तौति भगवानुत्पलदेवाचार्यः—

सदा सृष्टिविनोदाय सदा स्थितिसुखासिने ।
सदा त्रिभुवनाहार-तृप्ताय स्वामिने नमः॥ (शि० स्तो०) इति ।

आनन्दशक्तिरेवेच्छाज्ञानक्रियाशक्तीनां क्रमेण प्रसवभूमिरिति ताः अप्यत्रामुख्यत्वेन व्यञ्जनया परामृष्टाः । परमेश्वरस्यानन्दशक्त्यतिरेकाद् यद्विश्वरूपतयावभासनाख्यं समुच्छलनं नाम तत् पूर्वमेव व्याख्यातमिति नेह पुनरायस्तम् ॥३॥

अब तृतीय श्लोक में निर्वृतिशक्ति का वर्णन किया जाता है—

जिस तत्त्व में निर्वृति शक्ति की प्रधानता होती है उसे सिद्ध लोग शिवतत्त्व कहते हैं। शिव तत्त्व में सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण अहं में ही विलीन हुआ रहता है। उस दशा में केवल आत्मा ही आत्मा प्रकाशित होती है। वहाँ तो सारा ब्रह्माण्ड आत्मरूप ही होता है। आत्मा से भिन्न और किसी भी वस्तु का प्रकाश नहीं होता। आत्मप्रकाश सारे जगत् को इस प्रकार से व्याप्त किये रहता है कि जगत् भी आत्मप्रकाशरूप ही हो जाता है, जगत् आत्मरूपतया चमकता है जगद्रूपतया नहीं। इसलिए यह निर्वृति शक्ति अहं प्रकाशमात्र से ही संसार के समस्त भावों को भर देती है। निर्वृति का ही दूसरा नाम आनन्दशक्ति है। तो इसका स्वरूप आनन्दमय प्रकाश ही है। यह बोधरूप आनन्द परिपूर्ण होने के कारण और ऊपर वर्णन की हुई परमेश्वर की स्पन्दशक्ति के कारण छलकता-सा है। इस आनन्दशक्ति का ही विश्वमय स्वरूप जब उच्छलित होता है तो शान्तस्वरूप होती हुई भी यह आनन्दशक्ति अतिघोर (भयानक) और अत्यन्त घोर रूपों

के द्वारा पाँच प्रकार की क्रीड़ा का प्रपञ्च बनाती हुई प्रतीत होती है। भाव यह है कि आनन्द जब उच्छलित होता है तो विश्व के रूप को धारण करता है। विश्व के रूप को धारण करना इस शक्ति का एक खेल ही है। इस खेल में अनन्त प्रकार के घोर, घोरतर, घोरतम आदि शक्ति के स्वरूप प्रकट हो जाते हैं। इस विश्व की क्रीड़ा के पाँच प्रकार हैं। पहला प्रकार है—सृष्टि, जिससे संसार अपने से भिन्नतया प्रकाशित होता है। दूसरा प्रकार है—स्थिति। इसमें उत्पन्न हुआ संसार कुछ समय के लिए ठहरता है। तीसरा प्रकार है—संहार। संहार द्वारा समस्त भाव अपने मूल कारण में पुनः लीन हो जाते हैं। इस क्रीड़ा के चौथे प्रकार को पिधान कहते हैं। इस लीला से जीव अपने वास्तविक स्वरूप को सर्वथा भूल ही जाते हैं। अनुग्रह भगवती की क्रीड़ा का पाँचवाँ प्रकार है। इस लीला से जीव श्रवण मनन आदि की ओर लग जाता है। उस पर सद्गुरु की कृपा बढ़ती है और धीरे धीरे उसके मल धुल जाते हैं और अन्ततः उसे अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। इनको ही पञ्चकृत्य कहते हैं ॥३॥

अथावसरप्राप्तेन तृतीयेनेच्छाशक्तिमुखेन जगदम्बा स्तूयते—

यस्याः स्वतन्त्रकलनाकलिता विचित्रा
ज्ञानावलीवलयमूलमतीव सूक्ष्मा।
इच्छाभिधा हृदि झगित्यवभासमाना
नित्या विराजतितरां शिवभूतिभूता ॥४॥

पदसङ्गतिः—यस्याः - प्राक्परामृष्टायाः भगवत्याः स्वतन्त्रकलना - परमस्वातन्त्र्यरूपा निर्माणशक्तिः, तया कलिता - उल्लासिता विचित्रा, ज्ञानावल्याः यद् वलयं - मण्डलं तस्य मूलम्, निखिलस्य ज्ञानशक्त्युल्लासस्य कारणभूतेति, अतीव सूक्ष्मा, हृदि - साधकस्य हृदये झगिति - अचिरद्युतिवच्चाकचक्येनावभासमाना, नित्या - अविच्छिन्ना, शिवस्य - परमेश्वरस्य भूतिः - विभूतिरैश्वर्यं तद्रूपा, इच्छाभिधा - इच्छानाम्नी भगवत्याः मूर्तिः विराजतितराम् - विशेषेण नितरां प्रकाशते ।

विशेषार्थः—पशुजनसंसारे विजृम्भमाणाद् भगवतः स्वरूपगोपनसामर्थ्यरूपान्मायातत्त्वात् सदाशिवेश्वरतत्त्वद्वये विजृम्भमाणान्महामायातत्त्वादपि च परा काचन परमस्वातन्त्र्यरूपा चिदाख्या पारमेश्वरी शक्तिः । यस्या एव माहात्म्यात् सदाशिवादिदशावतारः परमेश्वरस्य सम्भवति । सैव जगन्निर्माणसमर्था चिच्छक्तिरत्र स्वतन्त्रकलनेत्युक्ता । चिच्छक्तेरविरहिता निर्वृतिः । तत्प्रधाना च शिवदशा । शक्तिदशायां विजृम्भमाणा इच्छाशक्तिरत्र तृतीया । ततश्च ज्ञानक्रियाशक्ती सदाशिवेश्वरदशे । तदियं तृतीयेच्छाख्या शक्तिः चिच्छक्तेः परम्परया स्फाररूपा ज्ञानशक्तेश्च साक्षात् कारणभूता पूर्वावस्था । अत एव स्वतन्त्रकलनाकलितेति, ज्ञानावलीवलयमूलमिति चोक्ता । सदाशिवदशायां चाहमंशस्य प्राधान्येनेदमंशस्य च गुणीकरणेन प्रपञ्चस्य "अहमिदमिति" विमर्शः । इच्छाभिधा शक्तिदशा च भगवतः सदाशिवदशोन्मुखता । अत्र प्रपञ्चस्य स्फुरणमस्ति वा नवास्तीति न शब्दैः स्फुटं प्रतिपादयितुं शक्यते । अचलस्य चिन्महासमुद्रस्य किञ्चिच्चलनात्मिकाऽन्तःसंरम्भमयी वीचितरङ्गफेनबुद्बुदादिप्रायप्रपञ्चजननोन्मुखतेव काचनानिर्वचनीयाऽनुभवमात्रवेद्या दशेयम् । अत एवातीवसूक्ष्मेति विशेषणमस्याः । उक्तं च श्रीमत्सोमानन्दपादैः—

गच्छतो निस्तरङ्गस्य जलस्यातितरङ्गिताम् ।

इत्यारभ्य—

बोधस्य स्वात्मनिष्ठस्य रचनां प्रति निर्वृतिः ।
तदास्थाप्रविकासो यस्तदौन्मुख्यं प्रचक्षते ॥
किञ्चिदुच्छूनता सैव महद्भिः कैश्चिदुच्यते ।
तस्येच्छा कार्यतां याता यया सेच्छः स जायते ॥ (शि० दृ०)

इत्यन्तेन ग्रन्थेन । अन्तःसंरम्भमयी स्वात्मचमत्करणरूपेयमेव शक्तिः परमेश्वरस्य परमेश्वरत्वनिर्वहणक्षमेति प्रतिपादितं प्राक् । तदेवेह पुनः परामृष्टं शिवभूतिभूतेति । स्वस्वरूपप्रत्यभिज्ञानोन्मुखानां भक्तजनानां हृदये प्रथममचिरद्युतिवत् क्षणमात्रं साश्चर्यं, सचमत्कारं, सकौतुकं, सानन्दं चावभासते । तदेतत् संक्षेपेणाह—झगित्यवभासमानेति ॥४॥

अब इस चौथे श्लोक में इच्छाशक्ति का वर्णन आता है—

यह कहा गया है कि परमेश्वर की पूर्ण स्वातन्त्र्य शक्ति का ही नाम स्पन्द है। उसी को इस श्लोक में स्वतन्त्रकलना कहा गया है। उसी के माहात्म्य से जिस तरह भगवती ने निर्वृति शक्ति का रूप धारण किया उसी तरह इच्छाशक्ति के रूप में भी प्रकट हो जाती है। इस तरह इच्छा चित्शक्ति का तीसरा रूप है। यह रूप बड़ा ही विचित्र है क्योंकि इस रूप में समस्त विश्व ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है परन्तु इससे भिन्न होकर प्रतीत नहीं होता। यदि निर्वृति को परमेश्वर का विश्वोत्तीर्ण रूप कहें तो इच्छा को विश्वमय तथा चित् को विश्वोत्तीर्ण-विश्वमय रूप कह सकते हैं। यह इच्छा किसी विषय की इच्छा नहीं। यह तो विषयस्पर्श के कलङ्क से रहित परिशुद्ध इच्छा

मात्र है। इसी को शिव की शक्ति कहा गया है। इसके बिना शिव शवतुल्य हो सकता। यही तो शिव की शिवता है। तो विषय की स्थूलता से रहित होने के कारण यह शुद्ध इच्छा अत्यन्त सूक्ष्म है। सिद्धों के अन्तःकरण में त्रपुसी लता के सूक्ष्म तन्तु के समान बारीक रूप में प्रकट हो जाया करती है। वहाँ आरम्भ में बिजली की तरह चकाचौंध करती हुई क्षणमात्र के लिए एक विचित्र आनन्दमय और आश्चर्यमय दर्शन देती है। इस कारण से भी इसे विचित्रा कहा गया है। यह इच्छा शक्ति ही ऊपर बताये हुए ढंग से शिव की अविनाशिनी विभूति है, उसका ऐश्वर्य है। आगे ज्ञानशक्ति के विकास में जो ज्ञानों की परम्पराएँ आभासित होती हैं, उनकी मूलकारण भूत यह इच्छा शक्ति ही है और वह शिव की विभूति के रूप में अत्यन्त विराजमान हो रही है ॥४॥

शक्तित्रयमुखेन क्रमेण स्तुत्वेदानीं चतुर्थेन ज्ञानशक्तिमुखेन भगवतीं स्तौति—

यावत्क्रियाप्रचयपुष्टिनिदानभूता
ज्ञानाभिधा शिवतनूः श्रुतिशास्त्रमूलम्।
इच्छाविकासफलितं हृदयं क्रियायाः
सर्वत्र या विजयतेऽवतु सा समस्तम् ॥५॥

पदसङ्गतिः—यावत्याः - सकलायाः क्रियायाः यः प्रचयः - स्फारः, तस्य पुष्टेर्निदानभूता - कारणभूता, ज्ञानाभिधा - ज्ञानशक्तिनाम्नी शिवस्य तनूः - पर-

मेश्वरस्यावस्थाविशेषः, श्रुतेरागमनिगमानाम्, अन्येषां च स्मृतिप्रभृतीनां शास्त्राणां मूलम्, इच्छायाः - इच्छाशक्तेर्विकासेन फलितं क्रियायाः हृदयं - सारं पूर्वावस्थारूपम्, ईदृशी या ज्ञानशक्तिः सर्वत्र विजयते - सर्वोत्कर्षेण वर्तते सा समस्तं जगद् अवतु - रक्षतु ।

विशेषार्थः—ज्ञानशक्तिः खलु सदाशिवदशारूपा, इच्छाशक्तेरपरावस्था क्रियाशक्तेश्च पूर्वावस्था । अत एव क्रियाप्रचयपुष्टिनिदानभूतेति स्तूयते । अत-एव चेच्छाविकासफलितं हृदयं क्रियाया इति वर्ण्यते । इच्छाशक्तेरेव हि विकासरूपा सदाशिवावस्थारूपिणी ज्ञानशक्तिः । इच्छाशक्तिश्चेद् विकासेनो-च्छूनतरतां क्रमेण नायास्यत् तदा ज्ञानशक्तेरुदय एव नाभविष्यदिति भावः । ततश्च ज्ञानशक्तेर्विकसति खल्वीश्वरदशारूपा क्रियाशक्तिः । अत एवेयमेव क्रियायाः हृदयभूता । पूर्वपूर्वावस्थाया उत्तरोत्तरावस्थास्वोतप्रोतत्वात् पूर्वावस्थो-त्तरावस्थाया हृदयमिति सुवचम् । क्रियाशक्तेः प्रतिष्ठास्थानमिति तात्पर्यम् । पुनश्च ज्ञानशक्तेरेव स्फारो निगमागमादिरूपः । ज्ञानशक्तिमाहात्म्यादेव परमे-श्वरः सदाशिवीभूय शुद्धविद्यारूपाणां सर्वेषामागमानां प्रवर्तयिता भवति । तदेतदाह—श्रुतिशास्त्रमूलमिति । विमलचरणं दैशिकवरमित्यत्र प्रथमपद्येऽपि सङ्केतितोऽयमर्थः । अवनं चात्रानुग्रहद्वारा शुद्धविद्याप्रकाशनेन पशूनां पतित्व-प्रख्यापनम् । तदेव स्वात्मप्रत्यभिज्ञानमिति मुक्तिरिति चैवंप्रकारैर्नामभिर-भिधीयते ॥५॥

अब इस पाँचवें श्लोक में ज्ञानशक्ति का वर्णन हो रहा है:—

जैसे अन्य समस्त शक्तियाँ परमेश्वर के ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में ठहरे हुए भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं वैसे ही ज्ञानशक्ति भी परमेश्वर का

ही एक स्वरूप है। यही शक्ति समस्त श्रुति-स्मृति-आगम आदि शास्त्रों की जड़ है। अर्थात् इसी का स्फार हमें वेद आदि शास्त्रों के रूप में दीख पड़ रहा है। इच्छा शक्ति ही जब विकसित होती हुई कुछ स्थूल-सी बनती है तो ज्ञानशक्ति का रूप धारण करती है। कुछ अधिक स्थूल होने पर वही क्रियाशक्ति के रूप में प्रकाशित हो जाती है। इस तरह से इच्छा के विकास का फल ज्ञानशक्ति है और क्रियाशक्ति का हृदय अर्थात् अन्तस्तल भी ज्ञानशक्ति ही है। क्रियाशक्ति के विकास और स्फार का मूलकारण भी ज्ञानशक्ति ही है। जो यह ज्ञानशक्ति इस संसार में सर्वत्र सर्वोत्कर्ष को प्राप्त कर रही है वही समस्त संसार का कल्याण करे। ज्ञानशक्ति के अधिष्ठाता भगवान् सदाशिव हैं। जीवों पर अनुग्रह करना उनका ही काम है। अतः ज्ञानशक्ति से ही प्रार्थना की जा रही है कि अनुग्रह द्वारा समस्त संसार का कल्याण करे ॥५॥

अथैतस्मिन् पद्ये पञ्चमेन क्रियाशक्तिमुखेन भगवत्यभिष्टूयते—

आब्रह्मकीटहृदयेष्वनुभूयमाना
सर्वेषु कार्यकरणेषु विराजमाना।
शम्भोः प्रसिद्धतमवर्ष्मविकासभूमिः
प्रीणातु सन्ततमियं सुभगा क्रियाख्या ॥६॥

पदसङ्गतिः—आब्रह्मकीटहृदयेषु - ब्रह्माणमारभ्य क्षुद्रकीटं यावत् सकलानां जीवनिकायानां हृदयेष्वनुभूयमाना, सर्वेष्वपि घटादिकार्येषु करणेषु च चक्षुरादिषु मनःप्रभृतिषु च विराजमाना - विशेषेण प्रकाशमाना, शम्भोः -

परमेश्वरस्य यत् प्रसिद्धतमं वर्ष्म - शरीरं - कैलासवासि श्रीकण्ठावतारूपं, तस्य यो विकासः तस्य भूमिः-कारणभूता, सुभगेयं क्रियानाम्नी शक्तिः सन्ततं प्रीणातु - प्रसन्नानुग्रहपरा भवतु ।

विशेषार्थः—इयं क्रियानाम निर्माणशक्तिः स्वप्नसंकल्पमनोराज्यादिषु विज्ञैः स्फुटमनुभूयमानापि घटादिनिर्माणेष्वज्ञैरपि स्पष्टमनुभूयते । घटादि-निर्माणेऽपि कुलालादीनां हृदय एव प्रथमं स्फुरति अनन्तरं शरीरे प्रसरति । नास्ति खलु कश्चिदपि योनिजोऽयोनिजो वा जीवो यस्य हृदये क्रिया-शक्तिर्न समुल्लसेत् । अतएवाह - आब्रह्मेत्यादि । घटादिकार्येषु हस्तपादादिषु चक्षुःश्रोत्रादिषु च करणेषु लोकेऽपि स्फुटं सर्वेषां प्रत्यक्षतो बहिरपि प्रकाशते क्रियाशक्तिः । एतदेवाभिप्रेतं द्वितीयपादेन । क्रियाशक्तिरेवेश्वरदशा । ईश्वर एव च त्रिनेत्रशरीरत्वेन श्रीकण्ठावतारत्वेन लोकशास्त्रप्रसिद्धभूरिपारमैश्वर्यचरितः । एवमेतस्य भगवतो विख्याततमस्य शरीरस्योल्लासभूमिरपि क्रियाशक्तिरेव देवस्य । एतच्छक्तिबलादेव श्रीकण्ठावतारशरीरेण सदैव भक्तजनसमुद्धरणक्रीडा-शीलः परमेश्वरः । तदेतदेवोक्तं तृतीयपादेन । प्रीणनं च भगवत्याः प्रसादो-न्मुखतैव । येन भक्तानां संसारमहासमुद्रादुत्तारः सम्भवति । सन्ततमित्यनेनानु-ग्रहस्याविच्छिन्नतोक्ता ॥६॥

अब इस छठे श्लोक में भगवती क्रियाशक्ति का वर्णन इस प्रकार से किया जा रहा है:—

क्रियाशक्ति कीट से लेकर ब्रह्मा जी तक समस्त जीव के हृदय में रहती हुई अनुभव में सदा आती रहती है व क्रिया तो हृदय में सदैव रहती ही है । कभी-कभी शरीर और इन्द्रियों तक उसका प्रसार

प्रत्यक्ष रूप में देखने में आता है। उस समय वह सभी करणों अर्थात् इन्द्रिय आदि क्रिया के साधनों में और घट आदि कार्यों में विराजती रहती है। भगवान् शम्भु के जिस स्वरूप को भक्त लोग ध्यान, धारणा, पूजा आदि का विषय बनाते हैं वह क्रिया-शक्ति-प्रधान भगवान् ईश्वर भट्टारक हैं। इसलिए शम्भु के सब से अधिक प्रसिद्ध शरीर के विकास की भूमि यह भगवती क्रियाशक्ति ही है। यह क्रियाशक्ति-सुन्दरी हम पर प्रसन्न रहे ॥६॥

पञ्चभिरपि मुखैर्भगवतीं सम्यक् स्तुत्वेदानीं सिद्धसम्प्रदायसम्मतेनोपासना-क्रमेण परादेव्याः स्वरूपपरामर्शपुरःसरं सप्तमेन स्तौति—

चिदानन्दाशंसा विदितकृतिमयी भावसुभगा
कला धन्या कन्या जयकृतिरनन्या शिवगुरोः।
दधानैन्द्रीं भूतिं हिमकिरणशौक्लीं तनुरुचिं
प्रभां सौरीं सोमामृतकवलिनी पातु जयिनी ॥७॥

पदसङ्गतिः—चित् आनन्दश्चेत्याशंसा - आशंस्यतऽनयेत्याशंसा नाम यस्याः, विदिर्ज्ञानं, कृतिः-क्रिया, तन्मयी - ज्ञानक्रियास्वरूपिणी, भावैः - स्वनिर्मितैर्जगद्रूपैः सुभगा, शिवगुरोः - गुरूणामपि गुरोः परमेश्वरस्य, कला - कलन-शक्तिः-निर्माणशक्तिः धन्या, कन्या - कमनीया शिवस्य, जयः - सर्वोत्कर्षेण वर्तनं कृतिर्यस्याः सा, परमेश्वरस्योत्कर्षकारणम्, परमेश्वरादनन्या - अभिन्ना, तस्य, स्वात्मरूपा शक्तिः, सोमामृतं - सहस्रदलात् कमलात् स्यन्दमानं चान्द्रम-मृतं, तस्य कवलिनी - पयिनी, ऐन्द्रीम् - इन्द्रधनुषः सम्बन्धिनीं भूतिं - वर्ण-

विभूतिं, हिमकिरणः - चन्द्रस्तस्य सम्बन्धिनीं च शौक्लीं - शुभ्रां तनुरुचिं - शरीरस्य कान्तिं, सौरीं - सूर्यसम्बन्धिनीं प्रभामरुणवर्णां चेति त्रिप्रकारां रुचिं दधाना - धारयन्ती कुण्डलिनीरूपा जयिनी - सर्वोत्कर्षेण वर्तनशीला परमेश्वरी पातु - रक्षतु ॥

विशेषार्थः—चित् - चैतन्यं, परमं स्वातन्त्र्यं पूर्णविश्वनिर्भराहन्ता-विमर्शः । स एवानन्दः । एवंविधविमर्शस्य पूर्णचमत्कारसारत्वात् । एकस्यैव तत्त्वस्य नामद्वयं चिदानन्देति । पारमेश्वरी शक्तिश्च चिदानन्दाशंसेति स्तूयते । ज्ञानक्रिये एवास्याः स्वरूपम् । तथाहि—मायाधिकारेऽपरावस्थायां पशुप्रमातृ-दशायामपरे संकुचितेऽशुद्धे ज्ञानक्रिये एव प्रमातृत्वनिर्वहणक्षमे । यो हि जानाति करोति च स एव चेतनोऽत्र जगति बुध्यते । तदत्र परिमितत्व-दशायामपि ज्ञानक्रियास्वरूपैव चिच्छक्तिः । मायोपरि महामायाधिकारे परा-परावस्थायां सदाशिवेश्वरभूमावपि शुद्धाशुद्धज्ञानक्रियाशक्तिमत्त्वमेव सदाशिव-त्वमीश्वरत्वं च । तदुपरि परावस्थायां परमेश्वरस्यापि स्वरूपभूते प्रकाशविमर्श-रूपे शुद्धे ज्ञानक्रिय एव । तस्मात् पारमेश्वरी पराशक्तिरत्र विदिकृतिमयीति स्तूयते । परमेश्वरस्य जगदाभासनपद्धी निर्माणशक्तिरेवात्र कला, न तु पशुजन-समुचितं किञ्चित्कर्तृत्वरूपं कलातत्त्वम् । सा च कलेयमेव भगवती । परमेश्वरा-दविरहितैवेयम् । तया विना तस्य परमेश्वरत्वमेव कुतः । अत एवेयमेव तस्य जयकृतिः । अस्या एव माहात्म्येन परमेश्वरः सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तथा चोक्तं श्रीमच्छङ्कराचार्यपादैः—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥ (सौं० ल०) इति ॥

भगवतीं सम्मदात्-प्रहर्षात् स्तुवन्, महदमृतमेव महामृतं, तेन-तत्पानेन यो मदस्तं श्रयन्, महामहिममण्डितः-प्रकृष्टेन माहात्म्येनालङ्कृतोऽप्यमृत-वाग्भवो, नाम पण्डितः विजयते-सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥

विशेषार्थः—वाचिकात् स्तवादतिप्रकृष्टः खलु मानसो धारणास्तवः, तस्मादपि हि परोऽनुभवादरपर्यायसाक्षात्कारस्तवः, परमेश्वररूपस्य स्वात्मनः पारमैश्वर्यरूपायाः शक्तेः प्रत्यभिज्ञानमेवात्र महानुभवः। स एव च पारमार्थिकः स्तवः। स एव हि रहस्यशास्त्रेषु शाम्भवसमावेश इत्युच्यते। उक्तं च श्रीमदु-त्पलदेवपादैः—

तदत्र निदधत् पदं भुवनकर्तृतामात्मनो
विभाव्य शिवतामयीमनिशमाविशन् सिद्ध्यति ॥ (ई० प्र०) इति।

अस्य समावेशस्यैव शाम्भवोपायता प्रतिपादिता श्रीमदभिनवगुप्तपादैः श्रीतन्त्रालोके। अत एव महानुभवेनैवोपायभूतेन सन्यक् स्तुताऽऽचार्येण भगवती। उपासनाक्रमेण तु श्रीचक्रमेव भगवत्याः परं स्वरूपमङ्गीक्रियते सम्प्रदायविद्भिः। श्रीचक्रस्थमध्यबिन्दुस्था च भगवत्युपास्यते स्वस्वरूप-प्रत्यभिज्ञानप्राप्तये। अनेनैवाभिप्रायेण भगवता शङ्कराचार्येणापि—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥ (सौं० ल०)

इत्येवं स्तुता जगदम्बा। श्रीचक्रस्थाः पार्यन्तिकत्रिकोणा एव मणयः।

त एव च सुरतरवः । तन्मयी त्रिकोणमण्डली च बिन्दुस्थायाः भगवत्याः मेखला । तया समलङ्कृता जगदम्बा । भगवत्येव शम्भोरानन्दशक्तिः । अपरोक्षस्वात्मचमत्करणमेवात्र महाऽमृतमदश्रयणम्, सम्मदश्चापि स एव । अमृता - अविच्छिन्ना या वाक् परा वाक्—

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता ।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः ॥ (ई० प्र०) ।

इत्येवं लक्षिता भगवता प्रत्यभिज्ञाकृता । तत्सकाशाज्जातोऽमृतवाग्भवः । येन खलु स्वकीयं राजराजेश्वरीपुत्रत्वं प्रत्यक्षीकृतमीदृशः, अत एव महामहिममण्डितः । अतः परस्य महिम्नोऽदर्शनात् । अमृतवाग्भवेत्यन्वर्थनामधेयः पण्डितः भगवतीं स्तुवन् सर्वोत्कर्षेण वर्तते । ईदृशीं भगवतीं महानुभवेन संस्तूय तत्परैः शब्दैः पुनः स्तुवन् कथं न सर्वोत्कर्षेण वर्तेत । याथार्थ्येन भगवत्याः स्तवनस्यैवानुत्तरोत्कर्षरूपत्वात् ॥८॥

सातवें श्लोक में जिस रूप का वर्णन किया गया है वह उपासना क्रम में भगवती का सूक्ष्म रूप है । अब इस आठवें श्लोक में सिद्ध-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध भगवती के पर अर्थात् सर्वोत्तम रूप के वर्णन के साथ साथ ही स्तोत्र का उपसंहार भी किया जा रहा है:—

यह श्रीचक्ररूपिणी देवी का वर्णन है । सिद्ध लोग श्रीचक्र की उपासना को ही देवी की सर्वोत्तम पूजा मानते हैं । आचार्य श्री अमृतवाग्भव जी बड़ी भारी महिमा से अलङ्कृत हुए हैं और बड़े भारी पण्डित भी हैं । उन्होंने आत्मसाक्षात्कार रूपी महान् अनुभव के द्वारा पहले ही भगवती पराशक्ति की स्तुति की हुई है । यह पराशक्ति उपास्य

रूप में श्रीचक्र के उस मध्यम बिन्दु में ठहरी है जिसकी पूजा बड़े बड़े सिद्धों द्वारा अनादि काल से की गई है। श्रीचक्र की त्रिकोण-मण्डली ही इस बिन्दुवासिनी भगवती की अमूल्य मणियों से बनी हुई मेखला है। कामदेव का नाश करने वाले भगवान् शम्भु को आनन्द देने वाली उसकी स्वात्म-अभिन्न प्रियतमा यह भगवती ही है। अब आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव जी समावेश रूपी परम अमृत के मद से मस्त होते हुए बड़े ही आनन्द से वैखरी वाणी से इस भगवती पराशक्ति की पुनः स्तुति कर रहे हैं अतः वे सब से बड़े उत्कर्ष का सेवन कर रहे हैं ॥८॥

माघमासे सिते पक्षे ह्येकादश्यां रवेर्दिने।
निधिव्योमखनेत्रे च वैक्रमे वत्सरे शुभे॥
जगदम्बा स्तवस्यास्य राष्ट्रभाषामयी शुभा।
बलजिन्नाथविदुषा टीका रम्या विनिर्मिता॥

इदानीं नवमेन कालनिर्देशपुरःसरं स्तोत्रमुपसंहरति—

राधाधिपमिते वर्षे श्रीशिवरात्रिपर्वणि।
स्तुतिमेतां विनिरमादाचार्योऽमृतवाग्भवः॥९॥

पदसङ्गतिः—जैमिनीयगणितसूत्रनीत्या रा इति २, 'धाधि' इति ९९, प इति १, इत्येवं १९९२ मिते वैक्रमे वर्षे श्रीशिवरात्रिरूपे महापर्वणि, अमृतवाग्भवो नामाचार्य एतां स्तुतिं विनिरमाद्-विरचितवानिति। अत्र कालोल्लेख-परे सामान्येनोपसंहाररूपे पद्ये विशेषार्थध्वननस्य नाधिकोऽवसर इति तदर्थं नायस्तमिति शिवम्॥९॥

चैत्रमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां शुक्रवासरे
वाणखाकाशनयने वैक्रमे वत्सरे शिवे ॥१॥
आचार्यप्रेरणेनेयं महामायाप्रसादतः ।
महामायाप्रसादार्थं टीका स्तोत्रस्य निर्मिता ॥२॥
अनुग्रहपरा देवी भक्तानां पालने रता ।
अनया टीकयाऽत्यर्थं जगन्माता प्रसीदतु ॥३॥

इति महामहिमश्रीमदाचार्यामृतवाग्भवप्रणीतः
बलजिन्नाथविरचितटीकयोपेतः
श्रीमहानुभवशक्तिस्तवः
सम्पूर्णः ॥

॥ श्री ॥

सिद्धमहामन्त्रस्वरूपिणी

॥ श्रीपरशिवप्रार्थना ॥

आचार्य—श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीता

प्रभो ! शम्भो ! दीनं विहितशरणं त्वच्चरणयो-
र्भवारण्यादस्माद्विषमविषयाशीविषवृतात् ।
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्ट्या पश्यन्निजतनयमात्मीकुरु शिव ! ॥१॥

अर्थ—हे सर्वशक्तिमान्! समस्त संसारका कल्याण करने वाले कल्याणरूप शिव भगवान्! आपके चरणोंमें दीन भावसे शरण आए हुये मुझको विषयरूपी भयङ्कर विषधर सर्पोंसे भरे हुये इस संसाररूपी जंगलसे बाहर निकाल कर अपनी दयादृष्टिसे देखते हुये अपने पुत्रको अपना आत्मीय बनाओ। यद्यपि श्रद्धा आदिका मुझे ज्ञान नहीं है, तथापि चारों ओरसे भयभीत हो कर हाथ जोडे हुये शरणमें आया हूँ। अतः अपने इस दीन पुत्रको हे शिव! अपने आप स्वीकार करो। ॥१॥

सूचना—इसका सेतिहास विधान "श्रीस्वाध्याय" त्रैमासिकपत्रके वर्ष १ अङ्क ४ में देखें।

श्रीपञ्चस्तवी

द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है। इसमें प्रथम लघुस्तवकी ७०० वर्ष प्राचीन संस्कृत टीका तथा भारतकी वर्तमान राष्ट्रभाषानुवादके साथ मुद्रित है। शेष चार स्तोत्र मूल मात्र हैं। साथ ही इस संस्करणमें 'श्रीमहानुभवशक्तिस्तव' भी दिया गया है। कागज और छपाई बहुत उत्तम है। मूल्य ॥) डाक व्यय अलग।

महामहिमश्रीमदमृतवाग्भवाचार्यप्रणीत

श्रीआत्मविलास

मनुष्यमात्रके लिए परम कल्याणकारी व सन्मार्ग प्रदर्शक यह वही अद्भुत आध्यात्मिक दार्शनिक ग्रन्थरत्न है, जिसके प्रकाशित होते ही दार्शनिक जगत्में हलचल-सी मच गई और सैकड़ों प्रतियां हाथों-हाथ लग गईं। इस ग्रन्थको पढ़नेसे स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है, चित्त शांत होता है। अतः यदि आप भी आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? ईश्वर जगदुत्पत्ति क्यों और किस प्रकार करता है ? हम क्या हैं और हमें क्या करना चाहिये ? दर्शन किसे कहते हैं ? उनका प्रारम्भ तथा अन्त कहां कहां होता है ? उनकी उपपत्ति क्या है ? आदि-आदि आध्यात्मिक गूढ़ रहस्यों से भलीभांति परिचित हो कर आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं तो इस ग्रन्थका अवश्य मनन कीजिये। आपके सभी सन्देह दूर हो कर अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा।

मूल्य २) मार्ग व्यय ॥=) अलग।

Verified-1985.

श्रीराष्ट्रसञ्जीवन

"श्रीराष्ट्रालोक" का भाष्य

यह ग्रन्थ विश्व-साहित्यमें एक अद्भुत है। सोलह वर्ष पहले इसका निर्माण हुआ था, यह संस्कृतमें है। इस अद्वितीय ग्रन्थको राष्ट्रभाषानुवादके साथ प्रकाशित करनेका आयोजन हो रहा है। इस सम्पूर्ण विशाल ग्रन्थ के प्रकाशनमें लगभग १२००० बारह सहस्र रुपये व्यय होंगे। यह सम्पूर्ण व्यय एक ही महानुभावका होगा, वे महानुभाव ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वर्णके हों साथ ही सच्चरित्र एवं आर्यप्रकृतिका होना आवश्यक है। उनका सचित्र परिचय भी इस ग्रन्थके प्रारम्भमें रहेगा। ग्रन्थकार के साथ ही इस ग्रन्थके प्रकाशकका नाम भी विश्वमें अमर रहेगा। उक्त नियमानुसार जो सज्जन इस ग्रन्थ प्रकाशन द्वारा राष्ट्र एवं साहित्य सेवाके साथ अपना जीवन सार्थक बनाना चाहते हों वे निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें।

सेठ श्री लक्ष्मीचन्द
डा० आर० सी० गुप्ता, गङ्गामन्दिर
भरतपुर, राजस्थान

TIRUPATI. & Kanchipuram
16696

तीसरी बार महामहिम-आचार्य- छप गया
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीत

श्रीराष्ट्रालोक

राष्ट्रभाषानुवादसहित

राष्ट्रवादी ही आर्य हैं। आर्य ही शान्तिकी स्थापना कर सकते हैं।

भारत भारतीयोंका है

स्वातन्त्र्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। राष्ट्र हमारा पिता है, माता है और आचार्य है। हम सदा उसके सेवक हैं। हमारा राष्ट्र हमें भोग और मोक्ष दोनों देता है।

हम सच्चे राष्ट्रिय हैं

अभारतीय भारत के अतिथि हो सकते हैं, राष्ट्रिय नहीं।

हम संक्रांतिका सदा आदर करते हैं। हमें ऐसी शांति नहीं चाहिये जो राष्ट्रको परतन्त्र बनाए।

राष्ट्रिय राष्ट्रके पुत्र होते हैं, पति नहीं।

भारतीय अपने आपको हिन्दू मानने में गौरवका अनुभव करते हैं। भारतीय आदर्शके विपरीत क्रांति किंक्रांति है, संक्रांति नहीं। यदि आप इन भावोंसे स्नेह करते हैं तो 'श्रीराष्ट्रालोक' अवश्य पढ़िये।

श्रीराष्ट्रालोक परम पवित्र भारतीय आदर्शका
एक जीवन शास्त्र है।

राष्ट्रप्रेमी इसका आदर कर रहे हैं। जनता हाथों-हाथ अपना रही है। आप भी आज ही मंगाइये। मूल्य ॥) मार्गव्यय =)

महामहिम-आचार्य-श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीत

कुछ ग्रन्थरत्न

१. श्रीपरशुरामस्तोत्र—राष्ट्रभाषाऽनुवादसहित।
द्वितीय संस्करण। मू० विश्वोद्धार

२. श्रीराष्ट्रालोक—राष्ट्रभाषाऽनुवादसहित।
तृतीय संस्करण। मू० ॥)

३. श्रीआत्मविलास—"श्रीसुन्दरी" राष्ट्रभाषाभाष्यसहित।
मू० २)

४. श्रीसप्तपदीहृदय— राष्ट्रभाषाऽनुवादसहित।
मू० विश्वोद्धार

५. श्रीसंक्रान्तिपञ्चदशी—राष्ट्रभाषागद्यपद्यऽनुवादसहित।
मू० ।)

६. श्रीमहानुभवशक्तिस्तव—संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या-सहित। मू० ॥)

७. श्रीमदमृतसूक्तिपञ्चाशिका—व्याख्यासहित (मुद्रालयमें है)

सेठ श्री लक्ष्मीचन्द
डा० आर० सी० गुप्ता० गङ्गा मन्दिर।
भरतपुर राजस्थान

VERIFIED 1989